भूमिका

जीवन मे अधकार छा रहा था। उन दिनो मे उदासी, निराशा और वेचैनी हावी हो रही थी। इन क्षणो मे प्रेक्षा ध्यान एवं नमस्कार महामत्र की साधना का सयोग हुआ। जीवन मे प्रकाश ही प्रकाश हो गया। अधकार छट गया। राह स्पष्ट हुई। जीवन की दिशा और दशा वदल गई। प्रेक्षा ध्यान साधना मेरा जीवन बन गया।

जैन आगमो मे ध्यान, आसन आदि की विपुल सामग्री है। दीर्घकाल से इच्छा थी कि "प्रेक्षा ध्यान" के सदर्भ मे "शास्त्रीय आधार" को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत किया जाये। आचार्यश्री महाप्रज्ञ के ध्यान साहित्य से प्रचुर सकेत एव आलेख प्राप्त हुए। उन्ही सोपानो से चढ़कर "शास्त्रीय आधार" को किंचित व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। उस सिन्धु-सम सामग्री का यहा विन्दु मात्र ही स्पर्श हो सका है। आशा है विद्वद् जन एव शोधार्थी हेतु अतीत के अनुसधान व भविष्य के निर्माण मे यह "लघु प्रयास" दिशा-सूचक यत्र का कार्य कर सकेगा।

प्रेक्षा ध्यान के सिद्धान्तो पर मुख्य रूप से पाच दृष्टियो से विचार किया जाता है—प्रयोजन, आध्यात्मिक दृष्टिकोण, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, प्रक्रिया एव परिणाम। इन्ही पाच पक्षो मे से चार पर (वैज्ञानिक दृष्टिकोण को छोडकर) शास्त्रीय आधार को व्यवस्थित रूप दिया गया है।

इस कार्य मे पूज्य गुरुदेवश्री तुलसी, आचार्यश्री महाप्रज्ञ, महाश्रमण श्री मुदित कुमार जी का सबल सदैव साथ रहा। मुनिश्री दुलहराजजी एव मुनिश्री राजेन्द्र जी का सान्निध्य एव सहयोग इस कार्य की गति-प्रगति का निमित्त वना। प्रत्यक्ष एव परोक्ष मे अनेक सहभागी वने है, उन सभी के प्रति विनम्र आभार।

मुनि धर्मेश

अनुक्रमणिका

प्रेक्षाध्यान	१
कायोत्सर्ग	७
श्वास-प्रेक्षा	१३
शरीर-प्रेक्षा	१६
चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा	१६
लेश्या-ध्यान	२२
अनुप्रेक्षा और भावना	२७
वर्तमान क्षण की प्रेक्षा	३४
आसन	३६
सदर्भ ग्रन्थ सूची	३६

प्रेक्षाध्यान

आधार

द्रष्टा का दर्शन

- एय पासगस्स दसण उवरयसत्थस्स पलियतकरस्स। आयारो ३।८५
  यह अहिसक और निरावरण द्रष्टा का दर्शन है।

प्रयोजन

सत्य की खोज

- अप्पणा सच्चमेसेज्जा, मेत्ति भूएसु कप्पए।
  उत्तरज्झयणाणि ६।२
  स्वय सत्य खोजे, सबके साथ मैत्री करे।

आत्म-साक्षात्कार

- सपिक्खए अप्पगमप्पएण। दसवेआलियं चूलिया २।१२
  आत्मा के द्वारा आत्मा को देखे।
- वियाणिया अप्पगमप्पएण जो रागदोसेहि समो स पुज्जो।।
  दसवेआलियं ९।३।११
  आत्मा को आत्मा के द्वारा जानकर जो रागद्वेष मे सम रहता है वह पूज्य होता है।

अनासक्ति का विकास

- अण्णहा ण पासए परिहरेज्ञा। आयारो २।११८
  अध्यात्म तत्त्वदर्शी वस्तुओं का परिभोग अन्यथा करे, आसक्ति से न करे।

स्वरूप

अप्रमाद की साधना

- धीरे मुहुतमवि णो पमायए। आयारो २।११
  धीर पुरुष मुहूर्त्तमात्र भी प्रमाद न करे।
- उट्ठिए णो पमायए। आयारो ५।२३१
  पुरुष उत्थित होकर प्रमाद न करे।
- सव्वतो पमत्तस्स भय, सव्वतो अप्पमत्तस्स णत्थि भय। आयारो ३।७५
  प्रमत्त को सब ओर से भय होता है। अप्रमत्त को कही से भी भय नही होता।
- एगमप्पाण सपेहाए। आयारो ४।३
  एक आत्मा की ही सप्रेक्षा करे।
- राइ दिव पि जयमाणे, अप्पमत्ते समाहिए झाति। आयारो ६।२।४
  भगवान् महावीर रात और दिन स्थिर और एकाग्र तथा अप्रमत्त रहकर समाहित अवस्था मे ध्यान करते थे।
- उव्वेहती लोगमिण महत बुद्धपमत्तेसु परिव्वएज्ञा। सूयगडो १।१२।१८
  जो इस महान् लोक को निकटता से देखता है वह अप्रमत विहार कर सकता है।
- समय गोयम ! मा पमायए। उत्तरज्झयणाणि १०।१
  हे गौतम (मानव) ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर।

कायोत्सर्ग

- असइ वोसट्ठचत्तदेहे स भिक्खू। दसवेआलियं १०।१३

जो मुनि वार-बार देह का व्युत्सर्ग और त्याग करता है, वह भिक्षु है।

- अभिक्खण काउसग्गकारी। दसवेआलियं चूलिया २।७
  साधु बार-बार कायोत्सर्ग करनेवाला हो।
- काउस्सग्ग तओ कुज्ञा, सव्वदुक्खविमोक्खण। उत्तरज्झयणाणि २६।३८
  कायोत्सर्ग सर्व दु खो से मुक्त करनेवाला है।

अन्तर्यात्रा

- पणया वीरा महावीहि। आयारो १।३७, देखे—भाष्य
  वीर पुरुष महापथ के प्रति प्रणत होते है। महापथ का अर्थ कुण्डलिनी—प्राणधारा भी है।
- पणए वीरे महाविहि
  सिद्धिपह णेयाउय धुव। सूयगडो १।२।२१
  धीर पुरुष लक्ष्य तक ले जाने वाले उस शाश्वत महापथ के प्रति प्रणत होते है, जो सिद्धि का पथ है।

श्वासप्रेक्षा (सहिए)

- अणिहे सहिए सुसवुडे आतहित दुक्खेण लब्भते।
  सूयगडो १।२।५२ देखे टिप्पण
  मुनि स्नेहरहित और आत्महित मे रत होकर विहार करे।
  आत्महित की साधना वहुत दुर्लभ है। सहित-कुम्भक करनेवाला आत्मस्थ हो जाता है। घेरण्ड सहिता मे सहित का अर्थ श्वास निरोध या श्वास को शान्त करना है।

शरीर प्रेक्षा

- जे इमस्स विग्गहस्स अय खणे त्ति मन्नेसी। आयारो ५।२१
  इस शरीर का यह वर्तमान क्षण है, इस प्रकार अन्वेषण करनेवाला (देखने वाला) अप्रमत्त होता है।

चैतन्यकेन्द्र-प्रेक्षा

- एत्थोवरए त झोसमाणे अय संधी ति अदक्खु।

  आयारो ५।२० देखे भाष्य

  जो आरम्भ से उपरत है, उसने अनारम्भ की साधना करते हुए "यह सधि है ऐसा देखा है।" सधि शब्द का अर्थ है—अप्रमाद के अध्यवसाय को जोडनेवाला शरीरवर्ती साधन जिसे चैतन्यकेन्द्र या चक्र कहा जाता है।

लेश्या ध्यान

- अवहिलेस्से परिव्वए। आयारो ६।१०६

  मुनि अवहिर्लेश्य, अप्रशस्त लेश्याओं का वर्जन कर परिव्रजन करे।
- तम्हा एयाण लेसाण, अणुभागे वियाणिया।

  अप्पसत्थाओ वज्जित्ता, पसत्थाओ अहिट्ठेज्जासि।।

  उत्तरज्झयणाणि ३४।६१

  इने लेश्याओं के अनुभागो को जानकर मुनि अप्रशस्त लेश्याओं का वर्जन करे और प्रशस्त लेश्याओं को स्वीकार करे।

अनुप्रेक्षा

- धम्मस्स ण झाणस्स चत्तारि अणुप्पेहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

  एगाणुप्पेहा, अणिच्चाणुप्पेहा, असरणाणुप्पेहा, संसाराणुप्पेहा।

  ठाणं ४।६८

  धर्म्यध्यान की चार अनुप्रेक्षाए है—एकत्व, अनित्य, अशरण एव ससार।

भावना

- भावणाजोगसुद्धप्पा, जले णावा व आहिया।
  णावा व तीरसम्पन्ना, सव्वदुक्खा तिउट्टति।। सूयगडो १।१५।५
  जिसकी आत्मा भावना योग से शुद्ध है वह जल मे नौका की तरह कहा गया है, वह तट पर पहुची हुई नौका की भाति सब दु खो से मुक्त हो जाता है।

आसन

- अवि झाति से महावीरे, आसणत्थे अकुक्कुए झाण।
  आयारो ९।४।१४
  भगवान् उकडू आदि आसनो मे स्थित और स्थिर होकर ध्यान करते थे।

प्रक्रिया

मन, वाणी और शरीर के कर्म को शांत कर देखना

- विणएत्तु सोय णिक्खम्म, एस महं अकम्मा जाणति पासति।
  आयारो ५।१२०
  इन्द्रिय-विषय का परित्याग कर निष्क्रमण करनेवाला वह महान् साधक अकर्मा होकर जानता, देखता है।

परिणाम

दुःखचक्र से मुक्ति

- जे कोहदसी से दु खदसी। आयारो ३।८३
  जो क्रोधदर्शी है वह दु खदर्शी है।
- से मेहावी अभिनिवट्टेज्जा कोह च दुक्ख च। आयारो ३।८४
  मेधावी क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रेय, द्वेष दु ख को छिन्न करे।

उपाधि से मुक्ति

- किमत्थि उवाही पासगस्स ण विज्जइ ? णत्थि। आयारो ३।८७
  क्या द्रष्टा के कोई उपाधि होती है या नही ? नही होती।

आत्म-रमण

- जे अणण्णदसी से अणण्णारामे, जे अणण्णारामे से अणण्णदंसी।
  आयारो २।१७३
  जो अनन्य को देखता है वह अनन्य मे रमण करता है और जो अनन्य मे रमण करता है वह अनन्य को देखता है।

पाप से मुक्ति

- आयकदंसी ण करेति पाव। आयारो ३।३३
  हिसा मे आतंक देखनेवाला पुरुष परम को जानकर पाप नही करता।
- समत्तदसी ण करेति पाव। आयारो ३।२८
  समत्वदर्शी पुरुष पाप नही करता।

कर्म-बंध का विलय

- एवं से अप्पमाएणं, विवेग किट्टति वेयवी। आयारो ५।७४
  प्रमाद से किए हुए कर्म-बध का विलय अप्रमाद से होता है।

कायोत्सर्ग

प्रयोजन

प्रवृत्ति-निवृत्ति के सन्तुलन के लिए और उपसर्गों को सहने के लिए

- सो उस्सग्गो दुविहो, चेट्ठाए अभिभवे य णायव्वो।
  भिक्खारिआइ पढमो उवसग्गाभिउजणे बीओ।।

आवश्यक निर्युक्ति १४६६

वह उत्सर्ग (कायोत्सर्ग) दो प्रकार का होता है—चेष्टा और अभिभव। भिक्षा आदि प्रवृत्ति के पश्चात् (प्रवृत्ति-निवृत्ति के सतुलन के लिए) कायोत्सर्ग करना "चेष्टा कायोत्सर्ग" है और प्राप्त उपसर्गों को सहन करने के लिये कायोत्सर्ग करना 'अभिभव कायोत्सर्ग' है।

भय-निवारण के लिए

- मोहपयडीभय अभिभवितु जो कुणइ काउसग्ग तु।

आव० निर्युक्ति १४६८

भय मोहनीय कर्म की एक प्रकृति (अवस्था) है। उसका अभिभव करने के लिए कायोत्सर्ग किया जाता है, बाह्य कारणो का प्रभाव करने के लिये नही।

स्वदोष दर्शन के लिए

- काउस्सग्ग मोक्खपहदेसिओ जाणिऊण तो धीरा।
  दिवसाइआरजाणट्ठयाइ ठायति उस्सग्ग।।

आव० निर्युक्ति १५११

कायोत्सर्ग मोक्ष-मार्ग के रूप मे उपदिष्ट है—ऐसा जानकर धृतिमान मुनि देवसिक आदि अतिचारो (स्व-दोष) को जानने के लिए कायोत्सर्ग करते है।

कर्म-क्षय हेतु

- काउस्सग्गो उग्गो कम्मक्खयट्ठाय कायव्वो।

आव० निर्युक्ति १५६८

अपने कर्मों को क्षीण करने के लिए कायोत्सर्ग करना चाहिए।

कषाय-विजय हेतु

- तस्स कसाया चत्तारि, नायगा कम्मसत्तुसेन्नस्स।
काउस्सग्गमभग्गं, करेंति तो तज्जयट्ठाए।। आव० निर्युक्ति १४७१
उस कर्मरूपी शत्रुसेना के चार नायक है—क्रोध, मान, माया, और लोभ। ये कायोत्सर्ग मे बाधा उपस्थित करते है, अत· उनको जीतने के लिए कायोत्सर्ग करना चाहिए।

मंगल के लिए

- पावुग्घाइ कीरइ उस्सग्गो मगलति उद्देसो। आव० निर्युक्ति १५५१
कायोत्सर्ग मगल है। अनिष्ट निवारण हेतु इसे किया जाता है।

स्वरूप

सर्व दुःख विमोचक

- कायोस्सग्ग तओ कुज्ञा, सव्व दुक्ख विमोक्खण।

उत्तरज्झयणाणि २६।३८

सर्व दुखो से मुक्त करानेवाला, कायोत्सर्ग करे।

काय के पर्यायवाची

- काए सरीर देहे, बुदी चय उवचए य सघाए।
उस्सय समुस्सए वा, कलेवरे भत्थतनुपाणू।। आव० निर्युक्ति १४६०

काय के पर्यायवाची शब्द तेरह है—काय, शरीर, देह वोन्दि, चय, उपचय, सघात, उच्छ्रय, समुच्छ्रय, कलेवर, भस्त्रा, तनु और पाणु।

उत्सर्ग के पर्यायवाची

- उस्सग्ग-विउस्सरणा, उज्झणा य अवकिरण-छड्डुण-विवेगो।
  वज्जण-चयणुम्मुअणा, परिसाडण-साडणा चेव।।

- आव० निर्युक्ति १४६५

उत्सर्ग के पर्यायवाची शब्द ग्यारह है—उत्सर्ग, व्युत्सर्जन, उज्झन, अवकिरण, छर्दन, विवेक, वर्जन, त्यजन, उन्मोचना, परिशातना एव शातना।

कायोत्सर्ग के प्रकार

सो उस्सग्गो दुविहो, चेट्ठाए अभिभवे य णायव्वो।

आव० निर्युक्ति १४६६

वह उत्सर्ग (कायोत्सर्ग) दो प्रकार का होता है—चेष्टा और अभिभव।

कायिक ध्यान

- काए वि अ अज्झप्प, वायाइमणस्स चेव जह होइ।
  कायवयमणो जुत्त, तिविह अज्झप्पमाहसु।।

आव० निर्युक्ति १४८४

जैसे मन मे अध्यात्म होता है, वैसे ही शरीर और वाणी मे भी अध्यात्म होता है। शरीर मे एकाग्रतापूर्वक चचलता का निरोध करना कायिक ध्यान है। वचन मे एकाग्रतापूर्वक असंयत भाषा का निरोध करना वाचिक ध्यान है। मन की एकाग्रता मानसिक ध्यान है। इस प्रकार तीर्थकरो ने ध्यान के तीन प्रकार वतलाए है।

प्रक्रिया

कायिक स्थिरता

- सयणासणठाणे वा जे उ भिक्खू न वावरे।
  कायस्स विउस्सग्गो छट्ठो सो परिकित्तिओ।। उत्तरज्झयणाणि ३०।३६
  सोने, बैठने या खडे रहने के समय जो भिक्षु काया को नही हिलाता-डुलाता, उसके काया की चेष्टा का जो परित्याग होता है, उसे व्युत्सर्ग कहा जाता है। वह आभ्यन्तर तप का छठा प्रकार है।
- मा मे एयउ काओत्ति, अचलओ काइअ हवइ झाण।
  आव० निर्युक्ति १४८८
  "मेरा शरीर कपित न हो"—ऐसा सोचकर जो निश्चल हो जाता है उसके कायिक ध्यान होता है।

खड़े होकर, बैठकर एवं लेटकर

- उस्सिअनिस्सन्नग निवन्नगे अ। आव० निर्युक्ति १४७५
  कायोत्सर्ग तीन प्रकार से होता है—खडे होकर, बैठकर एव लेटकर।

स्व-दोष दर्शन एवं सूक्ष्म श्वास-प्रश्वास

- काउ हिअए दोसे, जहक्कम जाव ताव पारेइ।
  ताव सुहुमाणुपाणू, धम्म सुक्क च झाइज्जा।। आव० निर्युक्ति १५१४
  स्व-दोषो को हृदय मे धारण कर, यथाक्रम उनकी आलोचना करे, जब तक गुरु कायोत्सर्ग सम्पन्न न करे, तब तक आन-प्राण (श्वास-प्रश्वास) को सूक्ष्म कर धर्म्य-शुक्ल ध्यान करे।

श्वासोच्छ्वास का परिणाम

- साय सय गोसऽद्ध तिन्नेव सया हवति पक्खमि।
  पच य चाउम्मासे अट्ठसहस्स च वारिसए।।
  आव० निर्युक्ति १५४४
  सायकालीन कायोत्सर्ग मे श्वासोच्छ्वास का परिणाम सौ, प्रात कालीन

मे पचास, पाक्षिक मे तीन सौ, चातुर्मासिक मे पाच सौ और वार्पिक मे एक हजार आठ है।

श्वास का कालमान

- पायसमा ऊसासा कालपमाणेण हुति नायव्वा।
  एव कालपमाण उस्सग्गेण तु नायव्व।।

  आव० निर्युक्ति १५५३

  एक उच्छ्‌वास का कालमान है—एक चरण का स्मरण। इस प्रकार कायोत्सर्ग से काल-प्रमाण ज्ञातव्य है।

शरीर की प्रवृत्ति का विसर्जन

- वोसट्ठचत्तदेहो काउस्सग्ग करिज्जाहि। आव० निर्युक्ति १५५६
  शरीर की प्रवृत्ति का विसर्जन और परिक्रम का त्याग कर कायोत्सर्ग करे।

पुन॰ पुनः अभ्यास

- असइ वोसट्ठ चत्तदेहे। दसवेआलियं १०।१३
  जो मुनि वार-वार देह की प्रवृत्ति का विसर्जन और त्याग करता है—वह भिक्षु है।
- अभिक्खण काउसग्गकारी। दसवेआलियं चूलिया २।७
  मुनि वार-वार कायोत्सर्ग करनेवाला हो।

परिणाम

धर्म का बोध

- नरा मुयच्चा धम्मविदु त्ति अजू। आयारो ४।२८
  देह के प्रति अनासक्त मनुष्य ही धर्म को जान पाते है और धर्म को जाननेवाले ही ऋजु होते है।

विशोधन, हल्कापन एवं प्रशस्त ध्यान

- काउस्सग्गेण भते ! जीवे कि जणयइ ? उत्तरज्झयणाणि २६।१३
  काउसग्गेण तीयपडुपन्न पायच्छित्त विसोहेई। विसुद्धपायच्छिते य जीवे निव्वुयहियए ओहरियभारो व्व भारवहे पसत्थज्झाणोवगए सुहसुहेणविहरइ।
  भते ! कायोत्सर्ग से जीव क्या प्राप्त करता है ?
  कायोत्सर्ग से वह अतीत और वर्तमान के प्रायश्चित्तोचित कार्यों का विशोधन करता है। ऐसा करनेवाला व्यक्ति भार को नीचे रख देने वाले भार-वाहक की भाति स्वस्थ हृदयवाला हल्का हो जाता है और प्रशस्त-ध्यान मे लीन होकर सुखपूर्वक विहार करता है।

विशोधन, तितिक्षा, अनुप्रेक्षा, एकाग्रचित्तता

- देहमइजड्डसुद्धी, सुहदुक्खतितिक्खया अणुप्पेहा।
  झायइ य सुह झाण, एगग्गो काउस्सग्गम्मि।।
  आव० निर्युक्ति १४७६
  कायोत्सर्ग करने से ये लाभ प्राप्त होते है—
  १. देह की जडता का विशोधन।
  २ मति की जडता का विशोधन।
  ३. सुख-दु ख की तितिक्षा।
  ४ अनुप्रेक्षा।
  ५. एकाग्रचित्तता।

श्वास-प्रेक्षा

प्रयोजन

श्वास-विजय

- णिज्झियसासो णिप्फदलोयणो मुक्कसयलवावारो।
  जो एहावत्थगओ सो जोई णत्थि सदेहो।।

  बृहद्नय चक्र, श्लोक ३८८

  श्वास-विजय, अनिमेष दृष्टि, मन, वचन और काया के व्यापार से मुक्त व्यक्ति योगी होता है। इसमे कोई सन्देह नही।

स्वरूप

सूक्ष्म श्वास-प्रश्वास

- अणिहे सहिए सुसवुडे, धम्मट्ठी उवहाणवीरिए।
  विहरेज्ज समाहितिदिए आतहित्त दुक्खेण लब्भते।।

  सूयगडो १।२।५२, देखे टिप्पण

  मुनि स्नेह रहित, श्वास को शात और नियन्त्रित करनेवाला, सुसंवृत, धर्मार्थी, तप मे पराक्रमी, शात इन्द्रियवाला होकर विहार करे। आत्महित की साधना वहुत दुर्लभ है। (सहिए' का अर्थ श्वास को शात करना रहा है)।

- सहिए धम्ममादाय, सेय समणुपस्सति। आयारो ३।६७

  श्वास को नियत्रित और शात करनेवाला साधक धर्म को स्वीकार कर श्रेय का साक्षात्कार कर लेता है।

- ताव सुहुमाणुपाणू, धम्म सुक्क च झाइज्जा। कायोत्सर्ग शतक १५१४

आन-प्राण को सूक्ष्म कर धर्म्य-शुक्ल ध्यान करे।

- कायचेट्ठ निरुभित्ता मण वाय च सव्वसो।
  वट्टइ काइए झाणे, सुहुमुस्सासव मुणी।।

व्यवहार भाष्य पीठिका, गाथा १२३

ध्यान तीन प्रकार के होते है—कायिक, वाचिक और मानसिक। शरीर की प्रवृत्तियो का निरोध करना कायिक ध्यान है। इस ध्यान मे श्वास-प्रश्वास का निरोध नही किया जाता किन्तु उसे सूक्ष्म कर लिया जाता है।

प्रक्रिया

श्वास को मन्द मन्द लेना एवं छोड़ना

- पलियक बधेउ, निरुद्धमणवयकायवावारो।
  नासग्गनिमियनयणो, मदीकयसासनीसासो।

पासनाहचरियं पृ० ३०४

ध्यान मुद्रा मे पर्यक-आसन, मन, वचन, और शरीर के व्यापार का निरोध, नासाग्र पर दृष्टि और मन्द श्वास-प्रश्वास होता है।

- मन्द मन्द क्षिपेद् वायु, मन्द मन्द विनिक्षिपेद्।
  न क्वचिद् वार्यते वायुर्न च शीघ्र प्रमुच्यते।।

यशस्तिलक चम्पू कल्प ३६, श्लोक ७१६

वायु को मन्द-मन्द लेना चाहिए और मन्द-मन्द छोडना चाहिए। हठात् न उसको रोकना चाहिए और न ही उसे छोडना चाहिए।

कालमान

- पायसमाउसासा कालपमाणेण होति नायव्वा।

व्यवहार भाष्य पीठिका गाथा १२२

- यावत् कालेनैकश्लोकस्य पादश्चित्यते तावत् कालप्रमाण कायोत्सर्गे उच्छ्वास् इति। मलयगिरि वृत्ति पत्र ४१।४२

श्वास-प्रश्वास का कालमान (लम्बाई) श्लोक के एक चरण के समान

निर्दिष्ट है। एक चरण के चिन्तन मे जितना समय लगता है उतना श्वास-प्रश्वास का कालमान होता है।

परिणाम

अव्यय चेतना का विकास

- सहिए दुक्खमत्ताए पुट्ठो णो झझाए। आयारो ३।६६
श्वास को नियत्रित और शात करनेवाला दु ख मात्रा से स्पृष्ट होने पर व्याकुल नही होता।

---

१ सहितो द्विविध प्रोक्त, प्राणायाम समाचरेत्।
सगर्भोवीजमुच्चार्य, निगर्भो बीजवर्जित ।। घेरण्ड संहिता ५।४६

सहित सूर्यभेदश्च उज्जायीशीतली तथा।
भस्त्रीका भ्रामरी मुर्च्छा केवली चाष्ट कुम्भका.।। घेरण्ड संहिता ५।४५

शरीर-प्रेक्षा

प्रयोजन

सतत अप्रमाद हेतु

- जे इमस्स विग्गहस्स अय खणे त्ति मन्नेसी। आयारो ५।२१
  'इस शरीर का यह वर्तमान क्षण है', इस प्रकार अन्वेषण करनेवाला अप्रमत्त होता है।

स्वरूप

साधना का सशक्त माध्यम—शरीर

- सरीरमाहु नाव त्ति, जीवो वुच्चइ -नाविओ।
  ससारो अण्णवो वुत्तो, ज तरति महेसिणो।। उत्तरज्झयणाणि २३।७३
  शरीर नौका है, जीव नाविक है और ससार समुद्र है, महान् मोक्ष की एषणा करनेवाले इसे तैर जाते है।

आत्म-दर्शन की प्रक्रिया

- आदा तणुप्पमाणो णाण खलु होइ तप्पमाण तु।
  त सवेयणरूव तेण हु अणुहवइ तत्थेव।।
- पस्सदि तेण सरूव जाणइ तेणेव अप्पसब्भाव।
  अणुहवइ तेण रूव अप्पा णाणप्पमाणादो।।

वृहद्नयचक्र ३८५, ३८६

जितना शरीर का आयतन है, उतना ही आत्मा का आयतन है। जितना आत्मा का आयतन है, उतना ही चेतना का आयतन है।

इसलिए प्रत्येक कण मे सवेदन होता है। उस सवेदन से मनुष्य अपने स्वरूप को देखता है, अपने अस्तित्व, स्वभाव को जानता है। शरीर मे होनेवाले सवेदन को देखना, चैतन्य को देखना है, उसके माध्यम से आत्मा को देखना है।

प्रक्रिया

शरीर को देखना

- पासह एय रूव। आयारो ५।२६
  तुम इस शरीर को देखो।

प्रकम्पन दर्शन

- लोय च पास विप्फदमाण। आयारो ४।३७
  तू देख। यह लोक (शरीर) क्रोध से चारो ओर प्रकम्पित हो रहा है।

शरीर के भीतर से भीतर देखना

- अतो अतो पूतिदेहतराणि, पासति पुढोवि सवताइ।
  आयारो २।१३०
  पुरुष इस अशुचि शरीर के भीतर से भीतर पहुचकर शरीर-धातुओं को देखता है और झरते हुए विविध स्रोतो को भी देखता है।

शरीर के स्रोतो को देखना

- उड्ढ सोता अहे सोता, तिरिय सोता वियाहिया, एते सोया वियक्खाया, जेहि सगति पासहा। आयारो ५।११८
  ऊपर स्रोत है, नीचे स्रोत है, मध्य मे स्रोत है। ये स्रोत कहे गये है। इनके द्वारा मनुष्य आसक्त होता है, यह तुम देखो।

परिणाम

कर्म का विलय

- एव से अप्पमाएण, विवेग किट्टति वेयवी। आयारो ५।७४
  प्रमाद से किए हुए कर्म-बन्ध का विलय अप्रमाद से होता है।

लोक का ज्ञान

- आयतचक्खू लोग-विपस्सी लोगस्स अहो भाग जाणइ, उड्ढ भाग जाणइ, तिरिय भाग जाणइ। आयारो २।१२५
  सयतचक्षु पुरुष लोकदर्शी (शरीरदर्शी) होता है। वह लोक के अधोभाग को जानता है, ऊर्ध्व भाग को जानता है और तिरछे भाग को जानता है।

अतीत-अनागत का ज्ञान

- स्वशरीरमनोवस्था , पश्यत· स्वेन चक्षुषा।
  यथैवाय भवस्तद्वद्, अतीतानागतावपि।। ध्यान द्वात्रिंशिका-२
  जिस व्यक्ति ने शरीर और मन मे घटित होनेवाली अवस्थाओं को देखने का अभ्यास किया है, वह अपने वर्तमान भव की तरह अतीत और अनागत को भी देखने लग जाता है।

चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा

प्रयोजन

वृत्तियो का परिष्कार, कामासक्ति से मुक्ति

- सधि विदित्ता इह मच्चिएहि। आयारो २।१२७

  पुरुप मरणधर्मा मनुष्य के शरीर की सधि को जानकर कामासक्ति से मुक्त हो।

स्वरूप

चैतन्य-केन्द्र का अर्थ

- १ अतीन्द्रियचैतन्योदयहेतुभूत कर्मविवरम्।

  २ अप्रमादाध्यवसायसन्धानभूत शरीरवर्तीकरण चैतन्यकेन्द्र चक्रमिति यावत्। आचारांगभाष्यम् ५।२०

  १ अतींन्द्रिय चेतना के उदय मे हेतुभूत कर्म-विवर।

  २ अप्रमाद के अध्यवसाय को जोडनेवाला शरीरवर्ती साधन को चैतन्य केन्द्र या चक्र कहा जाता है।

पर्यायवाची शब्द

- प्राचीनग्रन्थेपु सन्धि-विवर-रन्ध्र-चक्र-कमल-करणादीना समानार्थक प्रयोगो दृश्यते। आचारांगभाष्यम् ५।२०

  प्राचीन ग्रन्थो मे सन्धि, विवर, रन्ध्र, चक्र, कमल, करण आदि शब्दो का प्रयोग समान अर्थ मे देखा जाता है।

संधि की प्रेक्षा

- एत्थोवरए त झोसमाणे अय सधी ति अदक्खु। आयारो ५।२०
  जो आरभ से उपरत है, उसने अनारभ की साधना करते हुए 'यह सधि है'—ऐसा देखा है।
- समुट्ठिए अणगारे आरिए आरियपण्णे आरियदसी अय सधीति अदक्खु। आयारो २।१०६
  आर्य, आर्यप्रज्ञ, आर्यदर्शी और सयम मे तत्पर अनगार ने 'यह विवर है'—ऐसा जाना है।

करण के प्रकार

- कतिविहे ण भते ! करणे पण्णत्ते ? भगवई ६।१।५
  गोयमा ! चउव्विहे करणे पण्णत्ते, त जहा—मणकरणे, वइकरणे, कायकरणे, कम्मकरणे।
  प्राणी के पास चार करण होते है—मनकरण, वचनकरण, कायकरण, कर्मकरण।

करण और अवधिज्ञान

- जस्स ओहिणाणस्स जीवसरीरस्स एगदेसो करण होदि तमोहिणाणमेगक्खेत्त णाम। षट्खण्डागमु पुस्तक १३, पृ० २९५
  जिसमे जीव-शरीर का एक देश करण बनता है, वह एक क्षेत्र अवधिज्ञान है।
- जमोहिणाण पडिणियदखेत्तं वज्जिय सरीरसव्वावयवे वट्टदि तमणेयक्खेत्त णाम। षट्खण्डागम पुस्तक १३, पृ० २९५
  जो प्रतिनियत क्षेत्र के माध्यम से नही होता, किन्तु शरीर के सभी अवयवो के माध्यम से होता है —शरीर के सभी अवयव करण बन जाते है, वह अनेक क्षेत्र अवधिज्ञान है।

करण और संस्थान

- खेत्तदो ताव अणेगसठाणसठिदा। षट्खण्डागम् पुस्तक १३, पृ० २६६
  करणरूप मे परिणत शरीर-प्रदेश अनेक सस्थान वाले होते है। जैसे श्रीवत्स, कलश, शख, स्वस्तिक, नन्द्यावर्त आदि।

परिणाम

चैतन्य मे लीनता ऐहिक ममत्व से मुक्ति

- सधि समुप्पेहमाणस्स एगायतण-रयस्स इह विप्पमुक्कस्स णत्थि, मग्गे विरयस्स त्ति बेमि। आयारो, ५।३०
  जो कर्म-विवर को देखता है, एक आयतन मे लीन है, ऐहिक ममत्व से मुक्त है, हिसा से विरत है, उसके लिए कोई मार्ग नही है, ऐसा मै कहता हू।

लेश्या-ध्यान

प्रयोजन

लेश्या शुद्धि के लिए, भावो की विशोधि के लिए

- लेस्सासोधी अज्झवसाणविसोधीए होई जनस्स।
  अज्झवसाणविसोधी मदलेसायस्स णादव्वा।। मूलाराधना ७।१६११
  लेश्या (कषाय) की मदता से अध्यवसाय की शुद्धि होती है, और अध्यवसाय की शुद्धि से लेश्या की शुद्धि होती है, भावो की शुद्धि होती है।

स्वरूप

कषाय रंजित योग-प्रवृत्ति, कर्मों का झरना

- जोगपउत्ती लेस्सा कषायउदयाणुरजिया होइ।
  गोम्मटसार, जीवकांड, गाथा ४९०
  कषाय के उदय से रजित योग-प्रवृत्ति लेश्या होती है।
- कर्मनिस्यन्दो लेश्या। **उत्तराध्ययन वृहद्वृत्ति, पत्र ६५०**
  कर्मों का झरना लेश्या है।

आत्म-परिणाम

- योगवर्गणान्तर्गतद्रव्यसाचिव्यात् आत्मपरिणामो लेश्या।
  जैन सिद्धांत दीपिका ४।२८
  योगवर्गणा के अन्तर्गत पुद्‌गलो की सहायता से होने वाले आत्मपरिणाम को लेश्या कहते है।

लेश्या के प्रकार

- किण्हा नीला य काऊ य तेऊ पम्हा तहेव य।
  सुक्कलेसा य छट्ठा उ नामाइ तु जहक्कम।। उत्तरज्झयणाणि ३४।३
  यथाक्रम से लेश्याओं के ये नाम है—(१) कृष्ण (२) नील (३) कापोत (४) तेज (५) पद्म (६) शुक्ल।

कृष्ण लेश्या से युक्त व्यक्ति का स्वभाव

- पचासवप्पवत्तो तीहि अगुत्तो छसु अविरओ य।
  तिव्वारभपरिणाओ खुद्दो साहसिओ नरो।। उत्तरज्झयणाणि ३४ २१
- निद्धसपरिणामो निस्ससो अजिइदिओ।
  एयजोगसमाउत्तो किण्हलेस तु परिणमे।। उत्तरज्झयणाणि ३४।२२
  जो मनुष्य पाचो आश्रवो मे प्रवृत्त है, तीन गुप्तियो मे अगुप्त है, षट्काय मे अविरत है, तीव्र आरभ (सावद्य-व्यापार) मे सलग्न है, क्षुद्र है, बिना विचारे कार्य करने वाला है, लौकिक और पारलौकिक दोषो की शका-से रहित मन वाला है, नृशस है, अजितेन्द्रिय है—जो इन सभी से युक्त है, वह कृष्ण लेश्या मे परिणत होता है।

नील लेश्या से युक्त व्यक्ति का स्वभाव

- इस्साअमरिसअतवो अविज्जमाया अहीरिया।
  गेद्धी पओसे य सढे पमत्ते रसलोलुए सायगवेसए य।
  उत्तरज्झयणाणि ३४।२३
- आरभाओ अविरओ खुद्दो साहसिओ नरो।
  एयजोगसमाउत्तो नीललेस तु परिणमे।। उत्तरज्झयणाणि ३४।२४
  जो मनुष्य ईर्ष्यालु है, कदाग्रही है, अतपस्वी है, अज्ञानी है, मायावी है, निर्लज्ज है, गृद्ध है, प्रद्वेष करने वाला है, शठ है, प्रमत्त है, रस-लोलुप है, सुख का गवेषक है, प्रारम्भ से अविरत है, क्षुद्र है, बिना विचारे कार्य करने वाला है—जो इन सभी से युक्त है, वह नील लेश्या मे परिणत होता है।

कापोत लेश्या से युक्त व्यक्ति का स्वभाव

- वके वकसमायारे नियडिल्ले अणुज्जुए।
  पलिउचग ओवहिए मिच्छदिट्ठी अणारिए।। उत्तरज्झयणाणि ३४।२५
- उप्फालगदुट्ठवाई य तेणे यावि य मच्छरी।
  एयजोगसमाउत्तो काउलेस तु परिणमे।। उत्तरज्झयणाणि ३४।२६

जो मनुष्य वचन से वक्र है, जिसका आचरण वक्र है, माया करता है, सरलता से रहित है, अपने दोषो को छुपाता है, छद्म का आचरण करता है, मिथ्यादृष्टि है, अनार्य है, हसोड है, दुष्ट वचन बोलने वाला है, चोर है, मत्सरी है—जो इन सभी प्रवृत्तियो से युक्त है, वह कापोत लेश्या मे परिणत होता है।

तैजस लेश्या मे युक्त व्यक्ति का स्वभाव

- नीयावित्ती अचवले अमाई अकुऊहले।
  विणीयविणए दते जोगव उवहाणव।। उत्तरज्झयणाणि ३४।२७
- पियधम्मे दढधम्मे वज्जभीरू हिएसए।
  एयजोगसमाउत्तो तेउलेस तु परिणमे।। उत्तरज्झयणाणि ३४।२८

जो मनुष्य नम्रता से बर्ताव करता है, अचपल है, माया से रहित है, अकुतूहली है, विनय करने मे निपुण है, दान्त है, समाधियुक्त है, उपधान करने वाला है, धर्म मे प्रेम रखता है, धर्म मे दृढ़ है, पाप-भीरु है, हित चाहने वाला है—जो इन सभी प्रवृत्तियो से युक्त है, वह तेजोलेश्या मे परिणत होता है।

पद्मलेश्या से युक्त व्यक्ति का स्वभाव

- पयणुक्कोहमाणे य मायालोभे य पयणुए।
  पसतचित्ते दतप्पा जोगव उवहाणव।। उत्तरज्झयणाणि ३४।२९
  तहा पयणुवाई य उवसते जिइदिए।
  एयजोगसमाउत्तो पम्हलेस तु परिणमे।। उत्तरज्झयणाणि ३४।३०

जिस मनुष्य के क्रोध, मान, माया और लोभ अत्यन्त अल्प है, जो

प्रशात चित्त है, अपनी आत्मा का दमन करता है, समाधियुक्त है, उपधान करने वाला है, अत्यल्पभाषी है, उपशान्त है, जितेन्द्रिय है—जो इन सभी प्रवृत्तियो से युक्त है, वह पद्म लेश्या मे परिणत होता है।

शुक्ल लेश्या से युक्त व्यक्ति का स्वभाव

- अट्टरुद्दाणि वज्जिता धम्मसुक्काणि झायए।
  पसतचित्ते दतप्पा समिए गुत्ते य गुत्तिहि।। उत्तरज्झयणाणि ३४।३१
- सरागे वीयरागे वा उवसते जिइदिए।
  एयजोगसमाउत्तो सुक्कलेस तु परिणमे।। उत्तरज्झयणाणि ३४।३२

  जो मनुष्य आर्त्त और रौद्र—इन दोनो ध्यानो को छोडकर धर्म्य और शुक्ल—इन दो ध्यानो मे लीन रहता है, प्रशात चित्त है, अपनी आत्मा का दमन करता है, समितियो से समित है, गुप्तियो से गुप्त है, उपशात है, जितेन्द्रिय है—जो इन सभी प्रवृत्तियो से युक्त है, वह सराग हो या वीतराग, शुक्ल लेश्या मे परिणत होता है।

प्रक्रिया

- जल्लेसाइ दव्वाइ आदि अत्ति तल्लेसे परिणामे भवइ।

  जिस लेश्या के द्रव्य ग्रहण किये जाते है, उसी लेश्या का परिणाम हो जाता है।

परिणाम

अशुभ लेश्या का परिणाम

- किण्हा नीला काऊ तिन्नि वि एयाओ अहम्मलेसाओ।
  एयाहि तिहि वि जीवो दुग्गइ उववज्जई वहुसो।
  उत्तरज्झयणाणि ३४।५६

  कृष्ण, नील और कापोत—ये तीनो अधर्म-लेश्याए है। इन तीनो से जीव प्राय दुर्गति को प्राप्त होता है।

- किण्हा नीला काओ लेस्साओ तिण्णि अप्पसत्थाओ।
  पइसइ विरायकरणो सवेगमणुत्तर पत्तो।।

भगवती आराधना १६०८

कृष्ण, नील और कापोत—ये तीन अप्रशस्त लेश्याए है। इनका त्याग कर मनुष्य अनुत्तर सवेग को प्राप्त होता है।

शुभ लेश्या का परिणाम

- तेऊ पम्हा सुक्का तिन्नि वि एयाओ धम्मलेसाओ।
  एयाहि तिहि वि जीवो सुग्गइ उववज्जई बहुसो।।

उत्तरज्झयणाणि ३४।५७

तैजस, पद्म और शुक्ल—ये तीनो धर्म-लेश्याएं है। इन तीनो से जीव प्राय सुगति को प्राप्त होता है।

- तेओ पम्मा सुक्का लेस्साओ तिण्णि विदु पसत्थाओ।
  पडिवज्जेइय कमसो सवेगमणुत्तर पत्तो।।

भगवती आराधना १६०६

तैजस, पद्म शुक्ल —ये तीन प्रशस्त लेश्याए है। इन्हे क्रमश प्राप्त कर मनुष्य अनुत्तर सवेग को प्राप्त होता है।

अनुप्रेक्षा और भावना

प्रयोजन

आत्म-संस्थिति के लिए

- सोहमित्यात्तसंस्कारस्तस्मिन् भावनया पुन ।
  तत्रैव दृढसस्काराल्लभते ह्यात्मनि स्थितिम् । ।

समाधितंत्र श्लोक २८

आत्मा की भावना करनेवाला आत्मा मे स्थित हो जाता है। 'सोऽह' के जप का यही मर्म है।

समस्या-समाधान, सर्वदुःख-मुक्ति के लिए

- भावणाजोगसुद्धप्पा, जले णावा व आहिया ।
  णावा व तीरसपन्ना, सव्वदुक्खा तिउट्टति । ।   सूयगडो १५ । ५

जिसकी आत्मा भावना योग से शुद्ध है, वह जल मे नौका की तरह कहा गया है। वह तट पर पहुची हुई नौका की भाति सव दु खो से मुक्त हो जाता है।

शान्ति के लिए

- स्फुरति चेतसि भावनया विना, न विदुपामपि शान्तसुधारस ।
  न च सुख कृशमप्यमुना विना, जगति मोहविपादविपाऽऽकुले । ।

शान्तसुधारस १ । २

भावना के विना विद्वानो के चित्त मे भी शान्ति का अमृत रस स्फुरित विकसित नही होता। मोह और विपाद के विष से व्याकुल इस जगत्

मे भावना के बिना किंचित् भी सुख प्राप्त नही हो सकता।

वांछनीय संस्कारो के निर्माण हेतु

- आत्मानं भावयन्नाभिर्भावनाभिर्महामति ।
  त्रुटितामपि सधत्ते, विशुद्धध्यानसन्ततिम्।। योगशास्त्र ४।१२२
  भावना-योग से विशुद्ध ध्यान का क्रम, जो विच्छिन्न होता है, वह पुन॰ सध जाता है और वाछनीय सस्कारो का निर्माण होता है। ।

अवांछनीय संस्कारो के उन्मूलन के लिए

- लोभ अलोभेण दुगछमाणे, लद्धे कामे नाभिगाहइ। आयारो २।३६
  जो पुरुष लोभ को प्रतिपक्ष भावना—अलोभ से पराजित कर देता है वह प्राप्त कामो का सेवन नही करता। वह लोभ से मुक्त हो जाता है।

स्वरूप

द्रष्टा द्वारा प्रदत्त बोध

अदक्खुव ! दक्खुवाहिय, सद्दहसू अदक्खुदसणा।
हदि हु सुविरुद्धदसणे, मोहणिज्जेण कडेण कम्मुणा।।

सूयगडो १।२।६५

हे अद्रष्टा ! तुम्हारा दर्शन तुम्हारे ही मोह के द्वारा निरुद्ध है। तुम सत्य को नही देख पा रहे हो। अत तुम उस पर श्रद्धा करो जो द्रष्टा द्वारा तुम्हे बताया जा रहा है। अनुप्रेक्षा का आधार द्रष्टा द्वारा प्रदत्त बोध है।

अनुप्रेक्षा स्वाध्याय का एक प्रकार

- वायणा पुच्छणा चेव, तहेव परियट्टणा।
  अणुप्पेहा धम्मकहा, सज्झाओ पचहा भवे।। उत्तरज्झयणाणि ३०।३४
  स्वाध्याय के पाच प्रकार है—वाचना, पृच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षा एव धर्मकथा।

भावना का तात्पर्य

- भाविज्जइ वासिज्जइ, जीए जीवो विसुद्धचेट्ठाए।
  सा भावण त्ति वुच्चइ . ।। पासनाहचरिअं पृ० ४६०
  जिस विषय का अनुचिन्तन बार-बार किया जाता है या जिस प्रवृत्ति का वार-वार अभ्यास किया जाता है, उससे मन प्रभावित हो जाता है, इसलिए उस चिन्तन या अभ्यास को भावना कहा जाता है।

भावना

- पणवीस भावणाहि उद्देसेसु दसाइण।
  जे भिक्खू जयई निच्च से न अच्छइ मंडले।। उत्तरज्झयणाणि ३१।१७
  जो भिक्खू पच्चीस भावनाओं और दशाश्रुतस्कंध, व्यवहार और वृहत्कल्प के छब्बीस उद्देशो मे सदा यत्न करता है वह ससार मे नही रहता।

धर्म्य ध्यान की चार अनुप्रेक्षाएं

- धम्मस्स ण झाणस्स चत्तारि अणुप्पेहाओ पण्णत्ताओ, त जहा—
  एगाणुप्पेहा, अणिच्चाणुप्पेहा, असरणाणुप्पेहा, ससाराणुप्पेहा,
  ठाणं ४।६८
  धर्म्य ध्यान की चार अनुप्रेक्षाएं है अर्थात् धर्म्यध्यान के पश्चात् चार अनुप्रेक्षाओं का अभ्यास किया जाता है—एकत्व, अनित्य, अशरण एव ससार अनुप्रेक्षा।

शुक्ल ध्यान की चार अनुप्रेक्षाएं

- सुक्कस्स ण झाणस्स चत्तारि अणुप्पेहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
  अणतवत्तियाणुप्पेहा, विपरिणामाणुप्पेहा, असुभाणुप्पेहा, अवायाणुप्पेहा।
  ठाण ४।७२
  शुक्ल ध्यान की चार अनुप्रेक्षाए है—अनन्तवृत्तितानुप्रेक्षा, विपरिणाम अनुप्रेक्षा, अशुभ अनुप्रेक्षा, अपाय अनुप्रेक्षा।

अनित्य अनुप्रेक्षा

- से पुव्व पेय पच्छा पेय भेउर-धम्म, विद्धसण-धम्म, अधुव, अणितिय, असासय, चयावचइय, विपरिणाम-धम्मं पासह एय रूव।

आयारो ५।२६

तुम इस शरीर को देखो, यह पहले या पीछे एक दिन अवश्य छूट जायेगा। विनाश और विध्वस इसका स्वभाव है। यह अध्रुव, अनित्य और अशाश्वत है। इसका उपचय और अपचय होता है। इसकी विविध अवस्थाए होती है।

- णत्थि कालस्स णागमो। आयारो २।६२

मृत्यु के लिए कोई भी क्षण अनवसर नही है। वह किसी भी क्षण आ सकता है।

- वयो अच्चेइ जोव्वणं व। आयारो २।१२

अवस्था बीत रही है और यौवन चला जा रहा है।

- अच्चेइ कालो तूरति राइओ, न यावि भोगा पुरिसाण णिच्चा।
उविच्च भोगा पुरिस चयति , दुम जहा खीणफल व पक्खी।।

उत्तरज्झयणाणि १३।३१

जीवन बीत रहा है। रात्रियां दौडी जा रही है। मनुष्यो के भोग भी नित्य नही है। वे मनुष्य को प्राप्त कर उसे छोड देते है, जैसे क्षीण फलवाले वृक्ष के पक्षी।

अशरण अनुप्रेक्षा

- नाल ते तव ताणाए वा, सरणाए वा।
तुम पि तेसि नाल ताणाए वा सरणाए वा।। आयारो २।८

वे स्वजन तुम्हे त्राण या शरण देने मे समर्थ नही है। तुम भी उन्हे त्राण या शरण देने मे समर्थ नही हो।

- माया पिया ण्हुसा भाया भज्जा पुत्ता य ओरसा।
  नाल ते मम ताणाय लुप्पतस्स सकम्मुणा।। उत्तरज्झयणाणि ६।३
  जब मै अपने द्वारा किये गये कर्मों से छिन्न-भिन्न होता हूं, तब माता, पिता, पुत्र-वधू, भाई, पत्नी और पुत्र—ये सभी मेरी रक्षा करने मे समर्थ नही होते।

संसार अनुप्रेक्षा

- मोहेण गब्भ मरणाति एति। आयारो ५।७
  प्राणी मोह के कारण जन्म-मरण को प्राप्त होता है।
- सव्वभवेसु अस्साया वेयणा वेइया मए।
  निमेसतरमित्त पि ज साया नत्थि वेयणा।। उत्तरज्झयणाणि १६।७४
  मैने सभी जन्मो मे दु खमय वेदना का अनुभव किया है। वहा एक निमेष का अन्तर पडे उतनी भी सुखमय वेदना नही है।

एकत्व अनुप्रेक्षा

- अइअच्च सव्वतो सग ण मह अत्थित्ति इति एगोहमसि।
  आयारो ६।३८
  पुरुष सव प्रकार के सग का त्याग कर यह भावना करे—मेरा कोई नही है, इसलिए मै अकेला हू।
- एगो अहमसि, न मे अत्थि कोइ, न याहमवि कस्सइ, एव से एगागिणमेव अप्पाण समभिजाणिज्ञा। आयारो ८।६७
  मैं अकेला हू, मेरा कोई नही है, मैं भी किसी का नहीं हू। इस प्रकार वह भिक्षु अपनी आत्मा को एकाकी ही अनुभव करे।

अन्यत्व अनुप्रेक्षा

- अण्णे खलु कामभोगा अण्णो अहमसि। सूयगडो २।२।३४
  काम-भोग मुझसे भिन्न है और मै उनसे भिन्न हू। पदार्थ मुझसे भिन्न हैं और मै उनसे भिन्न हूं।

अशौच भावना

- अतो अतो पूतिदहतराणि, पासति, पुढोवि सवताइं।

आयारो २।१३०

पुरुष इस अशुचि शरीर के भीतर से भीतर देखता है और झरते हुए विविध स्रोतो को भी देखता है।

प्रक्रिया

ध्येय के साथ एकात्मकता

- तद्दिट्ठीए तम्मुत्तीए तप्पुरक्कारे तस्सण्णी तन्निवेसणे।

आयारो ५।११०

साधक ध्येय के प्रति दृष्टि नियोजित करे, तन्मय बने, ध्येय को प्रमुख बनाये, उसकी स्मृति मे उपस्थित रहे एवं उसमे दत्तचित्त रहे।

ध्यान के पश्चात् अनुप्रेक्षा का अभ्यास

- झाणोवरमेऽवि मुणी णिच्चमणिच्चाइचिंतणो वरमो।

ध्यानशतक श्लोक ६५

ध्यान को समाप्त कर अनित्य आदि अनुप्रेक्षाओं का अभ्यास करना चाहिए।

परिणाम

दृढ़ कर्म का शिथिलीकरण, असातवेदनीय कर्म का अनुपचय, संसार से शीघ्र-मुक्ति

- अणुप्पेहाए णं भते ! जीवे किं जणयइ ?

अणुपेहाए ण आउयवज्जाओ सत्तकम्मप्पगडीओ घणियबंधणबद्धाओ सिढिलबधणबद्धाओ पकरेइ, दीहकालट्ठिइयाओ हस्सकालट्ठिइयाओ पकरेइ, तिव्वाणुभावाओ मदाणुभावो पकरेइ, बहुपएसग्गाओ अप्पएसग्गाओ पकरेइ आउय च ण कम्म सिय बधइ सिय नो बधइ।

असायावेयणिज्ञ च ण कम्म नो भुज्जो भुज्जो उवचिणाइ। अणाइय च ण अणवदग्ग दीहमद्ध चाउरत ससारकंतार खिप्पामेव वीइवयइ।।

उत्तरज्झयणाणि २६।२३

भते ! अनुप्रेक्षा से जीव क्या प्राप्त करता है ?

अनुप्रेक्षा से वह आयुष-कर्म को छोडकर शेप सात कर्मों की गाढ-बन्धन से वन्धी हुई प्रकृतियो को शिथिल बन्धन वाली कर देता है, उनकी दीर्घकालीन स्थिति को अल्पकालीन कर देता है, उनके तीव्र अनुभव को मन्द कर देता है। उनके बहुप्रदेशाग्र को बदल देता है। आयुष्-कर्म का वध कदाचित् करता है, कदाचित् नही भी करता है। असात्-वेदनीय कर्म का बार-बार उपचय नही करता और अनादि, अनन्त, लम्वे मार्गवाली तथा चतुर्गति-रूप चार अन्तोवाली ससार अटवी को तुरन्त ही पार कर जाता है।

लक्ष्य-प्राप्ति

• जो जेण चित्र कुसलेण, कम्मुणा केणइ ह नियमेण।
भाविज्ञइ सा तस्सेव, भावणा धम्मसजणणी।।

पासनाहचरिअं पृष्ठ ४६०

अनेक व्यक्ति नाना भावनाओं से भावित होते है। जो किसी भी कुशल कर्म से अपने आपको भावित करता है, उसकी भावना उसे लक्ष्य की ओर ले जाती है।

समता की प्राप्ति

• भावनाभिरविश्रान्तमिति भावित-मानस ।
निर्मम सर्वभावेषु समत्वमवलम्वते।। योगशास्त्र ४।११०

जिसका मानस अनवरत भावनाओं से अनुभावित होता है, उसका ममत्व भाव मिट जाता है और वह समत्व का अवलम्वन करता है—समत्व पा लेता है।

वर्तमान क्षण की प्रेक्षा

स्वरूप

क्षण को जानना

- खणं जाणाहि पडिए। आयारो २।२४

  हे साधक ! तुम क्षण को जानो।
- इणमेव खण वियाणिआ। सूयगडो १।२।७३

  इस क्षण को जानो।
- मणसहिएण उ काएण, कुणइ वायाइ भासई जं च।

  एवं च भावकरण, मणरहिअ दव्वकरण तु।।

  कायोत्सर्ग शतक गाथा ३७

  शरीर और वाणी की प्रत्येक क्रिया भावक्रिया बन जाती है, जब मन की क्रिया उसके साथ होती है, चेतना उसमे व्याप्त होती है।

प्रक्रिया

भावक्रिया : गमन योग

- इदियत्थे विवज्जिता सज्झाय चेव पचहा।

  तम्मुत्ती तप्पुरक्कारे, उवउत्ते इरिय रिए।। उत्तरज्झयणाणि २४।८

  इन्द्रियो के विषयो और पाच प्रकार के स्वाध्याय का वर्जन कर, ईर्या मे तन्मय हो, उसे प्रमुख बना, उपयोग जागरूकतापूर्वक चले।
- तच्चित्ते तम्मणे तल्लेसे तदज्झवसिए तत्तिव्वज्झवसाणे तदट्ठोवउत्ते तदप्पियकरणे तब्भावणाभाविए अण्णत्थ कत्थइ मणं अकरेमाणे।

  अणुओगद्दाराइं सू० २७

चित्त और मन क्रियमाण क्रियामय हो जाए, इन्द्रिया उस क्रिया के प्रति समर्पित हो, हृदय उसकी भावना से भावित हो, मन उसके अतिरिक्त किसी अन्य विषय मे न जाए, इस स्थिति मे क्रिया भावक्रिया वनती है।

परिणाम

कर्म-मुक्ति

- णातीतमट्ठ ण य आगमिस्स, अट्ठं नियच्छति तहागया उ।
  विधूत-कप्पे एयाणुपस्सी, णिज्झोसइत्ता खवगे महेसी।

आयारो ३।६०

तथागत अतीत और भविष्य के अर्थ को नही देखते। कल्पना को छोडनेवाला महर्पि वर्तमान का अनुपश्यी हो, कर्मशरीर का शोपण कर उसे क्षीण कर डालता है।

आसन

प्रयोजन

ध्यान के लिए

- येन येन सुखासीना, विदध्युर्निश्चल मन ।
  तत्तदेव विधेय स्यान्मुनिभिबर्न्धुरासनम्।। ज्ञानार्णव २८।११
  जिस आसन से मन स्थिर हो वही आसन विहित है।
- अवि झाति से महावीरे, आसणत्थे अकुक्कुए झाण।
  आयारो ६।४।१४
  भगवान उकडू आदि आसनो मे स्थित और स्थिर होकर ध्यान करते थे।

स्वरूप

कायक्लेश

- ठाणा वीरासणाईया, जीवस्स उ सुहावहा।
  उग्गा जहा धरिज्ञति, कायकिलेस तमाहिय।।
  उत्तरज्झयणाणि ३०।२७
  आत्मा के लिए सुखकर वीरासन आदि उत्कट आसनो का जो अभ्यास किया जाता है, उसे कायक्लेश कहते है।

आसनो के तीन प्रकार

- उड्ढनिसीयतुयट्टणठाणं तिविह तु होई नायव्व।
  ओघनिर्युक्ति भाष्य, गाथा १५२

स्थानयोग के तीन प्रकार है—(१) ऊर्ध्वस्थान (२) निषीदन स्थान (३) शयनस्थान।

ऊर्ध्व स्थानयोग

- साधारण सविचार सणिरुद्धं तहेव वोसट्ट।
  समपादमेगपाद, गिद्धोलीणं च ठाणाणि।। मूलाराधना ३।२२३
  ऊर्ध्व के सात प्रकार है—साधारण, सविचार, सनिरुद्ध, व्युत्सर्ग, समपाद, एकपाद एव गृद्धोड्डीन।

निषीदन स्थानयोग

- पच निसिज्ञाओ पण्णत्ताओ त जहा—उक्कुडुया, गोदोहिया, समपायपुता, पलियका, अद्धपलियंका।

  ठाणं ५।५०

  निषीदन स्थानयोग के पाच प्रकार है—उत्कटुका, गोदोहिका, समपादपुता, पर्यड्का, अर्धपर्यड्का।

शयन स्थानयोग

- उड्ढमाई य लग डसायी य।
  उत्ताणोमच्छिय एगपाससाई य मडयसाई य।।

  मूलाराधना ३।२२५

  शयन स्थानयोग इस प्रकार है—लगण्डशयन, उत्तानशयन, अधोमुखशयन, एकपार्श्वशयन, मृतकशयन, ऊर्ध्वशयन।

ऊर्ध्वस्थान

- अवि उड्ढठाण ठाइज्ञा। आयारो ५।९१
  ऊर्ध्व (घुटनो को ऊचा और सिर को नीचा) कर कायोत्सर्ग करे।

परिणाम

तितिक्षा के लिए

- कायासुखतितिक्षार्थं सुखासक्तेश्च हानये।
  धर्मप्रभावनार्थञ्च, कायक्लेशमुपेयुषे।।   महापुराण २०।९१
  कायिक दु खो की तितिक्षा, सुखासक्ति की हानि और धर्म प्रभावना के लिए कायक्लेश मे अपने आपको नियोजित करना चाहिए।
- उड्ढजाणू अहोसिरे झाणकोट्ठोवगए सजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणे विहरइ।।   भगवई १।१।६
  इन्द्रभूति अणगार ऊर्ध्वजानु, अध सिर और ध्यान कोष्ठ मे लीन होकर सयम और तप से अपने आपको भावित करते हुए रहे है।

□

संदर्भ ग्रन्थ सूची

१ आयारो
२ सूयगडो
३ उत्तरज्झयणाणि
४ दसवेआलिय
५ अणुओगद्दाराइ
६ ध्यानशतक
७ कायोत्सर्ग शतक
८ मनोनुशासनम्—गणाधिपति तुलसी
९ जैन योग—आचार्य महाप्रज्ञ
१० अपना दर्पण अपना विम्व—आचार्य महाप्रज्ञ
११ मनन और मूल्याकन—आचार्य महाप्रज्ञ
१२ जैन योग चित्तसमाधि—सम्पादक डॉ नथमल टाटिया
१३ सस्कृति के दो प्रवाह—आचार्य महाप्रज्ञ
१४ Jain Meditation, Citta Samadhi Jaina Yoga
१५ महावीर की साधना का रहस्य—आचार्य महाप्रज्ञ
१६ जैन योग की परम्परा—मुनि राकेश कुमार
१७ जैन योग के सात ग्रन्थ—अनुवादक मुनि दुलहराज
१८ आवश्यक निर्युक्ति

□□